International Journal of Applied Research 2017; 3(4): 724-726

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(4): 724-726
www.allresearchjournal.com
Received: 10-02-2017
Accepted: 11-03-2017

चंद्रमौलि सिंह
शोध छात्र यूजीसी (नेट, जेआरएफ), दर्शनशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड, भारत

Correspondence
चंद्रमौलि सिंह
शोध छात्र यूजीसी (नेट, जेआरएफ), दर्शनशास्त्र विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड, भारत

बौद्ध धर्म में अस्पृश्यता उन्मूलन की प्रासंगिकता

चंद्रमौलि सिंह

प्रस्तावना

बौद्ध धर्म भारतीय परिवेश का एक ऐसा धर्म है जो भारत के बाहर अत्यधिक लोकप्रिय रहा तथा देश के सीमाओं से परे बौद्ध धर्म अत्यधिक लोगों द्वारा आत्मसात किया गया। बुद्ध ने राजसत्ता से लेकर आम आदमी के बीच की दूरी कम करने का रास्ता ढूंढा। प्राचीन कालीन वैदिक धर्म कालक्रम के प्रभावस्वरूप कर्मकांडों और विशेषाधिकारों से परिपूर्ण होता हुआ भारतीय जनसाधारण के लिए असहनीय और कष्टकारी हो गया। अनेक विसंगतियों के लिए धर्म की दुहाई दी जाने लगी और धीरे–धीरे जनसाधारण के बीच दूरियां बढ़ने लगी और भारतीय समाज क कार्य विभाजन एवं निष्पादन के आधार पर जोड़ने वाली वर्ण–व्यवस्था जाति व्यवस्था ने जन्म आधारित व्यवस्था को महत्व दिया, व्यवसायों को परम्परागत स्वरूप प्रदान किया और सेवा प्रदायी वर्ग को अस्पृश्य तक कह डाला और उन्हें अस्पृश्यता रूपी अभिशप्त जीवन की ओर अग्रसर होने के लिए विवश किया।

प्रत्येक मानव प्राणी के कुछ जन्मसिद्ध अधिकार हैं, जिन्हें मौलिक या प्राकृतिक अधिकार कहा जाता है। प्रत्येक मानव को अपने मर्जी का नैतिक जीवन जी सकने की स्वतंत्रता रही है। मैत्री के आधार पर कोई किसी के लिए कुछ भी त्याग कर सकता है, लेकिन कैदी के अतिरिक्त अन्य किसी को बलात् बंधन में बांधने का एवं उसका बलात् उपयोग करने का अधिकार किसी को नहीं है। अस्पृश्यता के माध्यम से समाज के एक हिस्से को उनके जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित करने का कार्य प्राचीन भारतीय समाज–व्यवस्था में किया गया जो पूर्ण रूप से अन्याय और अपराध था।

अस्पृश्यता हिन्दू समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास का एक ऐसा कलंक है, जिसके कारण हिन्दू धर्म के मानवीय पक्ष में संदेह होने लगता है। अस्पृश्यता की समस्या उन करोड़ों हिन्दुओं की समस्या है, जिन्हें धार्मिक तथा जातिगत आधार पर मानवोचित अधिकारों से वंचित करके समाज में निम्नतम स्थान देने का प्रयत्न किया जाता रहा है। भारतीय धर्मशास्त्रों और पुराणों में एक ओर आत्मवत सर्वभूतेषु एवं पंडिता समदर्शिन जैसे आदर्श प्रस्तुत किये गये हैं और दूसरी ओर मानव को छूने तक से परहेज किया गया है। भारतीय धर्मशास्त्रों में मनुष्य जाति को एक भाग को इस सीमा तक त्याज्य मान लिया गया कि उन्हें स्पर्श करने मात्र से अपवित्रता आ जायेगी। इस विरोधाभास पर अपना विचार व्यक्त करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा कि मानवीय उच्चता को कोई धर्म इतने सुंदर रूप में व्यक्त नहीं करता, जितना कि हिन्दू धर्म और किसी भी धर्म में मानव का इतना आधोपतन देखने को नहीं मिलता जितना कि हिन्दू धर्म में। अपनी उदारता, वैज्ञानिकता और त्याग में हिन्दू धर्म सर्वोच्च है, किन्तु अस्पृश्यता जैसी भावना के कारण यह निकृष्टतम है। कैसी विडम्बना है कि एक ओर आदि गुरू शंकराचार्य के अज्ञान को काशी में एक शूद्र ने दूर किया था और दूसरी ओर उन्हीं शंकराचार्य द्वारा धर्म की रक्षा के लिए नियुक्त पुरी के शंकराचार्य ने अस्पृश्यता को शास्त्रों द्वारा अनुमोदित कह कर तथा आज भी इसके औचित्य को बताकर एक संकीर्ण मोहवृत्ति का परिचय दिया। वास्तव में धर्म और धर्मशास्त्रों का कार्य मानवीय गुणों का विकास करके सभी को एकता के सूत्र में बांधना होता है, किन्तु जब कोई धर्मशास्त्र मानवीय जीवन को पतन की ओर ले जाकर व्यक्तियों को एक–दूसरे से घृणा करने की प्ररेणा दे तो उसे धर्मशास्त्र कैसे कहा जा सकता है। डॉ भीमराव अम्बेडकर के अनुसार धर्म वह सद्धर्म है जो मन के मैल को दूर कर निर्मल बनाये, जो प्रज्ञा की वृद्धि करें, जो मैत्री की वृद्धि करें और जो अनेक सामाजिक भेद–भाव को मिटा दें।

अस्पृश्यता भारत भूमि के लिए शताब्दियों पुराना अत्यंत भयंकर अभिशाप है। विश्व में अन्यत्र कहीं भी ऐसी विकराल समस्या देखने को नहीं मिलती। अस्पृश्यता के दानव ने मानव–मानव के बीच सामाजिक दूरी, उंच–नीच का भेद–भाव और पृथकता आदि समस्याओं को जन्म देकर जीवन के मूल्यों और दशाओं में एक मजबूत विभेदक रेखा खींचने का काम किया है। अति प्राचीन काल से विद्यमान विविधता और अनेकता ने भारतीय समाज में ऐसे विरोधाभासों एवं विसंगतियों को जन्म दिया है, जो कालांतर में भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गयी है। चिंतन, विश्वास और आचरण

के प्रायरू सभी पक्षों में असंगति और अन्तर्विरोध भारतीय समाज में आसानी से देखे जा सकते हैं। यह कठोर सामाजिक व्यवस्था की अपरिहार्य परिणति हैं। अस्पृश्यता जातिपरक सामाजिक संरचना का अति विकृत दोष है। भारतीय समाज में अस्पृश्यता का रोग बहुत पुराना है। इसकी जड़े इतनी गहरी हैं कि बुद्ध से लेकरगांधी तक अनेक लोगों ने इसके निवारण के लिए समय–समय पर प्रयास किया किन्तु यह किसी न किसी रूप में समाज में बनी रही। अस्पृश्यता एक सामाजिक यथार्थ है। अस्पृश्यता की धारणा केवल उच्च या मध्यम जातियों से ही समबद्ध नहीं है। अस्पृश्यता तो अस्पृश्यता में भी एक–दूसरे से प्रति अथवा अस्पृश्यों की निम्न जातियों के प्रति भी देखने को मिलती है। अस्पृश्यता की मनोवृत्ति जाति से नहीं बल्कि पिछड़ेपन और परम्परागत दृष्टिकोण से संबंधित है।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था लोगों की आवश्यकतापूर्ति से संबंधित कार्यों की सम्पन्न्ता के आधारपर चार वर्णों में विभक्त थी, जो क्रमशरू ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में जानी जाती थी। अपने गुणों एवं कर्मो में विकास करके वर्ण परिवर्तन कर सकने की सुविधा सभी को प्राप्त थी। कालान्तर में उत्तरवैदिक काल के पश्चात् वर्ण की प्राचीन पहचान जो कर्म पर आधारित थी, जन्म का स्वरूप धारण करने लगी। लोगों का जन्म जहां हुआ वहीं जीवनपर्यन्त रहने की बाध्यता हो गयी।

भारतीय वर्ण व्यवस्था का परिवर्तित स्वरूप ही जाति व्यवस्था के रूप में प्रतिस्थापित हुआ, जो भारतीय सामाजिक संगठन का एक विशिष्ट रूप साबित हुआ। जाति व्यवस्था भारतीय समाज को अनेकानेक समूहों में विभक्त करती है, जिसमें रहन–सहन, स्तर व्यवहार और आचरण में पर्याप्त अंतर है। इस व्यवस्था में अनेक निषेध, प्रतिबंध कठोरता एवं जटिलतायें हैं, फिर भी यह व्यवस्था निरंतर बनी हुई है। जाति व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसका प्रभाव एवं नियंत्रण व्यक्ति पर जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त बना रहता है। वर्ण व्यवस्था से रूपान्तरित और निरंतर चली आ रही जाति व्यवस्था में कब और कैसे अस्पृश्यता का समावेश हो गया इसका स्पष्ट उल्लेख और इसके लिए उत्तरदायी किसी एक कारण का उल्लेख नहीं मिलता।

उत्तरवैदिक काल के अंतिम दिनों में चाण्डाल, डोम और अंत्यज शब्दों का प्रयोग प्रारंभ तो हो गया था लेकिन उनके प्रति कटुता इतनी अधिक नहीं थी कि उन्हें हिन्दू समाज से अलग मान लिया जाये। धीरे–धीरे सामाजिक परिवर्तन के कारण और अनके शासन व्यवस्थाओं के दुष्परिणाम स्वरूप और मुस्लिम शासनकाल आते–आते भारतीय हिन्दू समाज की धर्मान्धता अपनी चरम सीमा पर पहुंय गयी। इस काल में धर्म के नाम पर अछूत कहे जाने वाले वर्ग को एक अलग सामाजिक स्थिति प्रदान करने का प्रयत्न किया जाने लगा। समाज के शीर्ष पर रहने वाले लोग जो अपने को द्विज कहते थे अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के लोगों ने शूद्र के रूप में स्थान प्राप्त जाति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधियों के लिए अयोग्य घोषित करते हुए उन्हें अस्पृश्यता कहना प्रारंभ किया। मानवता के प्रति इससे दुरूखद और कुछ नहीं हो सकता कि एक मनुष्य के छूने मात्र से दूसरा मनुष्य अपवित्र हो जायेगा।

अस्पृश्यता का अर्थ है जो छूने योग्य नहीं है। अस्पृश्यता सामाजिक, पृथक्करण, भेदभाव, छूआ–छूत, उच्च–निम्न और पवित्रता–अपवित्रता के आधार पर आधारित सह मनोभाव है, जिसके अनुसार वर्णशंकर जाति या निम्न व्यवसाय करने वाली जाति के सदस्यों को अस्पृश्य या अछूत माना जाता है।

बौद्ध काल में शूद्रों को तप करने का अधिकार नहीं था किन्तु भगवान बुद्ध ने सबके लिए निरूश्रेयस का मार्ग खोल दिया, जो सामाजिक समरसता एवं सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय का उद्घोष करने वाला सर्वभूत हिते रतारू को प्रतिस्थापित करता है।

बौद्ध धर्म मानव जीवन को निष्कुलष बनाकर सबको साथ लेकर, गले लगाकर चलने की शिक्षा देता है। भगवान बुद्ध की वाणी पर आधारित बौद्ध धर्म के विभिन्न ग्रंथ सदाचार को महत्व देते हैं। बौद्ध धर्म के ग्रंथ महामंगल सूत्त में वर्णन मिलता है कि माता–पिता की सेवा, पुत्र दार का संग्रह, दान धर्म–चर्या, अनवद्य कर्म उत्तम मंगल हैं। तप, ब्रहमचर्य, आर्यसत्यों का दर्शन, निर्वाण का साक्षात्कार उत्तम मंगल है। वह सुखी है जो जय–पराजय का त्याग करता है। जय वैर को उत्पन्न करता है, पराजय दुख का प्रसव करता है अस्तु दोनों त्याज्य है। राग–द्वेष और मोह अकुशल मूल हैं। अक्रोध से क्रोध को जीतें, साधुता से असाधुता को जीतें, कदर्य को दान से और मृषावादी से सत्य से जीतें। बौद्ध धर्म के सार के रूप में निम्नांकित तथ्य व्यक्त किये जा सकते हैं। सुत्तपिटक के दीघ निकाय के अंतर्गत महावग्ग विभाग का 12वां संयुक्त जो सच्चा संयुक्त के नाम से जाना जाता है, में चार आर्यसत्य की बात कही गयी है, जो इस प्रकार है– दुख है, दुख का कारण है, दुख का निरोध हो सकता है एवं दुख निरोध का उपाय है। दुख नाश के उपाय के रूप में भगवान बुद्ध ने जिन आठ उपायों को बताया है वे इस प्रकार हैं– सम्यक् दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति एवं सम्यक समाधि। यहां सम्यक का अर्थ अच्छी प्रकार एवं अति से बचते हुए मध्यम मार्ग को आचरण में अपनाने से है।

बौद्ध धर्म में दस शील का वर्णन मिलता है, जिसका महत्वपूर्ण स्थान है। सम्पूर्ण मानव सृष्टि को शीलवान बनाना ही भगवान बुद्ध का उद्देश्य था। शील का अर्थ है उत्तम स्वाभाव। अहिंसा, चोरी न करना, ब्रहमचर्य, सत्यभाषण, प्रमाद स्थान से विरति, नृत्य, गीत आदि का विरोध, श्रृंगार का बहिष्कार, रात्रि भोजन का त्याग, भूमिशयन करना और असंग्रह का भाव रखना बौद्ध धर्म के अंतर्गत शील के रूप में वर्णित है, जो मानव जगत को महानता की ओर ले जाने वाला होता है।

भगवान बुद्ध ने मानव जीवन में अपनायी जा सकने वाली सप्त विशुद्धियों का वर्णन किया है। शील विशुद्धि, चित्त विशुद्धि, दृष्टि विशुद्धि, कांछा वितरण विशुद्धि, मार्ग–अमार्ग ज्ञान दर्शन विशुद्धि, प्रतिपति ज्ञान दर्शन विशुद्धि,ज्ञानदर्शन विशुद्धि।

भगवान बुद्ध की वाणी को ही उसके भिक्षओं द्वारा संग्रहीत करके बौद्ध ग्रंथों के रूप में प्रणयन किया गया है, जो मानव मात्र के कल्याण के लिए श्रेयस्कर है। भगवान बुद्ध ने गृह त्याग वास्तव में मानव जीवन के परिष्कार के मार्ग को ढूंढ़ने के लिए हुआ था और भगवान तथागत ने उन मोक्षदायी उपायों को ढूढकर जनसाधरण के लिए सुलभ किया। गौतम बुद्ध के विचारों के अनुशीलन से कदापि यह तथ्य प्रकट नहीं होता कि वे संसार की नश्वरता एवं दुखमयता से घबराकर सांसारिकता का त्याग कर दिया था, अपितु सांसारिक दुखमयता के समूल नाश के उपायों की तलाश में उनके द्वारा गृह त्याग किया गया था, जो मानव जाति के कल्याणर्थ तत्कालीन आवश्यकता थी।

बुद्ध की शिक्षा निश्चित रूप से वही शिक्षा है जो भारतीय धर्म दर्शन की शिक्षा है। धार्मिक कर्मकाण्डीय आडम्बरों को यदि हिन्दू धर्म से पृथक कर दिया जाये तो वही बौद्ध धर्म की शिक्षा होगी जो मानव जगत को भाई–भाई के रूप में देखने वाली होगी एवं जाति–पांति, उंच–नीच की दूरी मिटाने वाली होगी। आज की अशांत मानवता को सच्ची शांति भगवान बुद्ध की वाणी ही प्रदान कर सकती है। अस्पृश्यता जैसी तुच्छ मानसिकता का भागव भगतवान बुद्ध के एक कथन– सर्वभूत मैत्री मात्र से समूल नष्ट हो सकता है। अस्पृश्यता राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाती है। आज मानव कल्याण पारस्परिक सौहार्द और विश्व शांति को बनाये रखने के लिए बुद्ध के आदर्श की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नया समाज–राहुल सांकृत्यायन, अप्रैल 1951।
2. संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1997।
3. बौद्ध धर्म दर्शन–आचार्य नरेन्द्र देव, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटनां।
4. महाभारत, शांति पर्व,– गीताप्रेस गोरखपुर।
5. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा–भारतीय दर्शन रूप रेखा, मोतीलाल बनारसीदास, 1983।